[2023] 16 एस.सी.आर. 1547 : 2023 आई.एन.एस.सी. 1093

वाद का विवरण

डेरेक ए. सी. लोबो एवं अन्य

बनाम

उलरिक एम. ए. लोबो (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 5094/2011)

दिसम्बर 07, 2023

[सी. टी. रविकुमार तथा संजय कुमार, न्यायमूर्ति]

शीर्ष टिप्पणियाँ

विचारणीय मुद्दा: मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों के मूल्यांकन के उपरांत, विचारण न्यायालय ने वाद (वसीयत के प्रमाणीकरण) को स्वीकार करते हुए यह अभिधारित किया कि वादकारीगण अपनी दिवंगत माता सी. की दिनांक 10.11.1992 की अंतिम वसीयत एवं वसीयतनामा के प्रमाणीकरण (प्रोबेट) प्राप्त करने के हकदार हैं। तथापि, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को पलट दिया। इस निर्विवाद स्थिति के परिप्रेक्ष्य में कि वसीयत का निष्पादन सी. द्वारा किया गया था, विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा संदिग्ध परिस्थितियों के रूप में ग्रहण की गई परिस्थितियाँ वास्तव में ऐसी संदिग्ध परिस्थितियाँ हैं, जो प्रस्तुतकर्ता (प्रोपाउंडर) को उन्हें दूर करने हेतु बाध्य करती हैं।

वसीयत - प्रोबेट - उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने के उपरांत यह अभिधारित किया कि दिनांक 10.11.1992 की वसीयत संदिग्ध परिस्थितियों से आच्छादित है और विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को पलट दिया - औचित्य:

अभिधारित: अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से प्राप्त अप्रतिवादित तथ्यात्मक स्थिति यह है कि वसीयतकर्ता, जिनका 08.01.1993 को 69 वर्ष की आयु में निधन हुआ, एस.एस.एल.सी. तक शिक्षित थीं और अंग्रेज़ी पढ़ने-लिखने में सक्षम थीं। वे 6 वर्षों तक नगर पार्षद रहीं तथा एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता भी थीं। पीडब्ल्यू-3, जो विवादित वसीयत के अभिप्रमाणित साक्षियों में से एक हैं, ने बयान दिया कि वसीयतकर्ता ने स्वयं उन्हें वसीयत के अभिप्रमाणन हेतु बुलाया था और उन्होंने वसीयतकर्ता को हस्ताक्षर करने से पूर्व दस्तावेज़ पढ़ते हुए देखा था। पीडब्ल्यू-2, जो वसीयतकर्ता के पुत्रों में से एक हैं, ने भी इस कथन की पुष्टि की कि पीडब्ल्यू-3 को उनकी माता ने फोन पर वसीयत के अभिप्रमाणन हेतु बुलाया था तथा उन्होंने स्वयं वसीयत पढ़ी थी। प्रतिवादियों द्वारा जिरह के दौरान उनके कथनों को अविश्वसनीय ठहराने हेतु कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। पीडब्ल्यू-3 ने यह भी कहा कि वसीयतकर्ता ने उनके समक्ष ही वसीयत

पर हस्ताक्षर किए थे। यह नहीं कहा जा सकता कि गठिया (आर्थराइटिस) से पीड़ित व्यक्ति दस्तावेज़ की विषयवस्तु को पढ़ने और समझने में असमर्थ होगा। इस न्यायालय ने प्रतिवादी सं. 5 द्वारा अभिलेख डी-5 प्रस्तुत कर किए गए संशोधन के प्रयास पर भी विचार किया है। अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि वसीयतकर्ता अपनी मृत्यु तक 53 दिनों तक अस्पताल में रहीं। ऐसी स्थिति में, यदि प्रतिवादी सं. 5 यह कहता है कि 20.11.1992 को वे डी-5 का निष्पादन करते समय स्वस्थ मानसिक अवस्था में थीं, तो वह यह कैसे कह सकता है कि अस्पताल में भर्ती होने से पूर्व अर्थात् 10.11.1992 (विवादित वसीयत) को वे स्वस्थ मानसिक अवस्था में नहीं थीं। डी-5 के माध्यम से प्रस्तुत किए गए उसके कथन के आलोक में यह तर्क नहीं उठाया जा सकता था कि वसीयतकर्ता स्वस्थ मानसिक अवस्था में नहीं थीं। साथ ही, प्रतिवादी सं. 5 के विधिक प्रतिनिधि, जिन्होंने अकेले ही प्रदर्श पी-2 वसीयत के निष्पादन का विवाद किया था, वर्तमान में इस मामले का प्रतिवाद नहीं कर रहे हैं। वसीयतकर्ता अशिक्षित नहीं थीं और उन्होंने वसीयत की विषयवस्तु को समझे बिना हस्ताक्षर नहीं किए थे। इन परिस्थितियों में, वे संदेह, जिन्होंने प्रतिवादी सं. 5 के मन में उत्पन्न होकर उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए, टिक नहीं सकते। अतः उन्हें कायम नहीं रखा जा सकता। [पैरा 14, 17]

वसीयत - संदिग्ध परिस्थितियाँ:

अभिधारित: जो पक्ष वसीयत के निष्पादन को संदिग्ध बताते हुए चुनौती देता है, उसे उन संदिग्ध परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख (प्रतिपादन) करना आवश्यक है; तभी प्रस्तुतकर्ता (प्रोपाउंडर) विधिक रूप से उन संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने के लिए बाध्य होगा। [पैरा 15]

वसीयत - प्रमाण का भार - भार का स्थानांतरण:

अभिधारित: जब प्रस्तुतकर्ता द्वारा उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार वसीयत के प्रमाण का भार निर्वहन कर दिया जाता है और वसीयतकर्ता की क्षमता को *प्रथमदृष्टया* सिद्ध करने वाला साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया जाता है, तब विरोध करने वाले पक्ष पर यह भार होता है कि वह प्रथमदृष्टया ऐसी संदिग्ध परिस्थितियों के अस्तित्व को प्रदर्शित करे, जिससे यह भार पुनः प्रस्तुतकर्ता पर स्थानांतरित हो सके कि वह उन्हें दूर करे। जिन परिस्थितियों को विरोधी पक्ष संदिग्ध मानता है, उनके ज्ञान के बिना प्रस्तुतकर्ता उन्हें कैसे दूर करेगा और न्यायालय को उसकी प्रामाणिकता एवं वैधता के संबंध में कैसे संतुष्ट करेगा। [पैरा 16]

उद्धरणों एवं अन्य संदर्भों की सूची

मीनाक्षीअम्मल (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम चंद्रशेखरन एवं अन्य, [2004] 5 परिशिष्ट एस.सी.आर. 898 : (2005) 1 एस.सी.सी. 280; *मधुकर डी. शेंडे बनाम ताराबाई आबा शेडगे*, [2002] 1 एस.सी.आर. 132 : (2002) 2 एस.सी.सी. 85 - पर निर्भर।

मोतूरु नलिनी कंठ बनाम गैनेडी कालीप्रसाद (मृत, विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से), 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1488; *गुरदियाल कौर एवं अन्य बनाम करतार कौर एवं अन्य*, [1998] 2 एस.सी.आर. 486 : (1998) 4 एस.सी.सी. 384; *रामाबाई पद्माकर पाटिल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम रुक्मिणीबाई विष्णु वेखंडे एवं अन्य*, [2003] 2 परिशिष्ट एस.सी.आर. 583 : (2003) 8 एस.सी.सी. 537 - संदर्भित।

नाथिया बाई एवं अन्य बनाम गंगाराम एवं अन्य, (2010) 1 एम.पी.एल.जे. 140 - संदर्भित।

अन्य वाद विवरण, जिसमें अपीलाधीन आदेश एवं अधिवक्तागण शामिल हैं

दीवानी अपीलीय अधिकारिता : सिविल अपील संख्या 5094/2011।

कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु द्वारा एम.एफ.ए. संख्या 3077/2001 में पारित दिनांक 21.11.2008 के निर्णय एवं आदेश से।

अधिवक्तागण:

निखिल नैय्यर, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री प्रिथा श्रीकुमार अय्यर, नवीन हेगड़े, अभ्युदय शिशोदिया, अधिवक्तागण – अपीलकर्ताओं की ओर से।

देवाशीष भरुका, सुश्री सर्वश्री, सुश्री स्वाति मिश्रा, अधिवक्तागण – प्रतिवादियों की ओर से।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

सी. टी. रविकुमार, न्यायमूर्ति

1. यह अपील कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु द्वारा एम.एफ.ए. संख्या 3077/2001 में पारित दिनांक 21.11.2008 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा दक्षिण कन्नड़, मैंगलोर स्थित तृतीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा वाद संख्या 21/1997 में पारित दिनांक 20.02.2001 के निर्णय एवं डिक्री को पलट दिया गया।

2. विवादित वाद मूलतः दिनांक 10.11.1992 की वसीयत, जो दिवंगत सेसिलिया लोबो द्वारा निष्पादित की गई थी, के प्रोबेट हेतु एक याचिका के रूप में उनके पुत्रों डॉ. डेरेक

ए.सी. लोबो तथा सेड्रिक पी.ए. लोबो, जो उसमें संयुक्त निष्पादक नामित थे, द्वारा दायर किया गया था। उक्त कार्यवाही में मूल प्रतिवादी सं. 1 एवं 6, जो दिवंगत सेसिलिया लोबो की पुत्रियाँ हैं, ने केविएट दाखिल कर वसीयत के निष्पादन एवं उसकी प्रामाणिकता का विवाद किया। तत्पश्चात, इसे भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 295 के अंतर्गत एक मूल वाद में परिवर्तित किया गया और इसे वाद संख्या 21/1997 के रूप में क्रमांकित किया गया। स्पष्टतः, प्रतिवादी सं. 5, जो अपीलकर्ताओं के एक अन्य भाई थे, ने लिखित बयान दाखिल कर वाद का प्रतिरोध किया तथा अपीलकर्ताओं की बहनें, जो वर्तमान में प्रतिवादी सं. 3 एवं 7 हैं (वाद में प्रतिवादी सं. 1 एवं 6), ने संयुक्त रूप से लिखित बयान दाखिल किया। वादकारियों की ओर से प्रथम वादी ने स्वयं को पीडब्ल्यू-1 के रूप में परीक्षित कराया, प्रतिवादी सं. 7 को पीडब्ल्यू-2 के रूप में परीक्षित किया गया तथा एक अभिप्रमाणित साक्षी को पीडब्ल्यू-3 के रूप में परीक्षित किया गया। प्रतिवादियों की ओर से प्रतिवादी सं. 5 को डीडब्ल्यू-1 के रूप में परीक्षित किया गया, जतीन सी. पटना को डीडब्ल्यू-2 के रूप में तथा सी.वी. जयदेवी नामक अंगुलीछाप एवं हस्तलेखन विशेषज्ञ को डीडब्ल्यू-3 के रूप में परीक्षित किया गया। मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के उपरांत, विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्री करते हुए यह अभिधारित किया कि वादकारीगण अपनी दिवंगत माता सेसिलिया गर्ट्रूड लोबो की दिनांक 10.11.1992 की अंतिम वसीयत एवं वसीयतनामा के प्रोबेट प्राप्त करने के हकदार हैं। साथ ही, दिनांक 20.02.2001 के निर्णय के अनुसार अन्य परिणामी निर्देश भी जारी किए गए।

3. विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादी सं. 5 ने अपील, अर्थात् एम.एफ.ए. संख्या 3077/2001, दाखिल की, जो अंततः अपीलाधीन निर्णय में परिणत हुई। अन्य किसी भी प्रतिवादी ने इसके विरुद्ध कोई अपील दायर नहीं की। साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन के उपरांत, उच्च न्यायालय ने यह अभिधारित किया कि दिनांक 10.11.1992 की वसीयत संदिग्ध परिस्थितियों से आच्छादित है और विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को पलट दिया। परिणामस्वरूप, वाद को निरस्त कर दिया गया।

4. दिनांक 09.07.2009 के आदेश के अनुसार, इस न्यायालय ने पक्षकारों को निर्देश दिया कि वे उस दिन की स्थिति के अनुसार यथास्थिति बनाए रखें, जब तक कि आगे कोई आदेश पारित न किया जाए।

5. श्री निखिल नैय्यर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, अपीलकर्ताओं की ओर से तथा श्री देवाशीष भरुका, विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी सं. 2 एवं 3 (जो वाद में प्रतिवादी सं. 1 एवं 6 थे) की ओर से, को सुना गया। अन्य किसी भी प्रतिवादी, जिनमें मृत प्रतिवादी सं. 3 एवं 5 के विधिक प्रतिनिधि भी शामिल हैं, ने नोटिस प्राप्त होने के बावजूद इस वाद का प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा।

6. विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री तथा अपीलाधीन आदेश का साधारण अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि दिवंगत सेसिलिया गर्ट्रूड लोबो द्वारा दिनांक

10.11.1992 की वसीयत के निष्पादन के प्रश्न पर दोनों न्यायालय एकमत हैं, इस अर्थ में कि उसी ने वसीयतकर्ता के रूप में उस पर हस्ताक्षर किए थे। विचारण न्यायालय ने यह अभिधारित किया कि वादकारियों ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (संक्षेप में 'उत्तराधिकार अधिनियम') की धारा 63 तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में 'साक्ष्य अधिनियम') की धारा 68 के प्रावधानों के अनुसार वसीयत के निष्पादन को सिद्ध कर दिया है। तथापि, श्रीमती सेसिलिया गर्ट्रूड लोबो द्वारा वसीयत के निष्पादन का निष्कर्ष निकालने के पश्चात भी, उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय को पलट दिया कि संदिग्ध परिस्थितियों के मद्देनज़र यह नहीं कहा जा सकता कि वादकारी वसीयत के विधिवत एवं वैध निष्पादन को सिद्ध करने में सफल हुए हैं। वस्तुतः, उच्च न्यायालय ने विवादित वसीयत के निष्पादन के संबंध में वसीयतकर्ता की मानसिक स्थिति के बारे में कोई विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज नहीं किया। अपीलाधीन आदेश से यह भी स्पष्ट होता है कि वसीयतकर्ता की शारीरिक स्थिति पर विस्तृत विचार करते हुए, यह पाया गया कि वह गठिया (आर्थराइटिस) से पीड़ित थीं और पर्याप्त पीड़ा में थीं, तथा इस आधार पर उच्च न्यायालय ने यह माना कि अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि उन्होंने वसीयत की विषयवस्तु को समझकर उसका निष्पादन किया। इस बिंदु पर हम थोड़ी देर बाद विस्तार से विचार करेंगे। उच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित संदिग्ध परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैं:

(i) यह सिद्ध करने में विफलता कि वसीयतकर्ता ने वसीयत की विषयवस्तु को समझकर उसका निष्पादन किया;

(ii) वसीयत के लाभार्थियों की वसीयत के निष्पादन में प्रमुख भागीदारी;

(iii) वसीयत से यह कारण स्पष्ट नहीं होता, बल्कि लगभग अप्रकट है, कि वसीयतकर्ता ने अपने कुछ बच्चों को वंचित क्यों किया;

(iv) महत्वपूर्ण साक्षियों का परीक्षण न किया जाना, जिनमें वसीयत का प्रारूप तैयार करने वाले अधिवक्ता भी शामिल हैं; तथा

(v) वसीयतकर्ता की मृत्यु के पश्चात, किंतु वसीयत के प्रोबेट दिए जाने से पूर्व, वादकारियों द्वारा कुछ संपत्तियों का विक्रय किया जाना।

7. इन्हीं कारणों को निर्दिष्ट करते हुए और उन्हें विवादित वसीयत के चारों ओर विद्यमान संदिग्ध परिस्थितियाँ मानते हुए, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को पलट दिया और यह अभिधारित किया कि विचारण न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालना त्रुटिपूर्ण था कि वादकारी दिनांक 10.11.1992 की वसीयत के विधिवत एवं वैध निष्पादन को सिद्ध करने में सफल हुए थे।

8. यह लगभग स्थापित विधिक स्थिति है कि वसीयत के निष्पादन को सिद्ध करने का भार प्रस्तुतकर्ता (प्रोपाउंडर) पर होता है और उसके निर्वहन के पश्चात यह भार विरोध करने

वाले पक्ष पर आ जाता है कि वह यह स्थापित करे कि वसीयत वैध नहीं है। निस्संदेह, यदि वसीयत का विरोध करने वाले पक्ष द्वारा संदिग्ध परिस्थितियों का प्रतिपादन किया गया हो और उन्हें *प्रथमदृष्टया* सत्य भी प्रदर्शित किया गया हो, तो ऐसा भार पुनः प्रस्तुतकर्ता पर स्थानांतरित हो जाएगा कि वह न्यायालय को संतुष्ट करते हुए उन संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करे, ताकि वसीयत को वास्तविक (जेनुइन) के रूप में स्वीकार किया जा सके। उपरोक्त स्थापित स्थिति के आलोक में तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के बीच इस प्रश्न पर मतभेद है कि क्या विवादित वसीयत विधि के अनुसार वैध रूप से सिद्ध की गई थी, हमें इस प्रश्न पर विचार करना होगा। इस संदर्भ में, चूँकि यह निर्विवाद है कि वसीयत का निष्पादन सेसिलिया गर्ट्रूड लोबो द्वारा किया गया था, विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा जिन परिस्थितियों को संदिग्ध परिस्थितियाँ माना गया है, वे वास्तव में ऐसी संदिग्ध परिस्थितियाँ हैं, जो प्रस्तुतकर्ता को उन्हें दूर करने के लिए बाध्य कर सकें।

9. वर्तमान वाद के समुचित विचार के लिए इस न्यायालय के निर्णय "**मोतूरु नलिनी कंठ बनाम गैनेडी कालीप्रसाद (मृत, विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से)**[1]" का संदर्भ लेना उपयुक्त होगा, जिसमें वसीयत को सिद्ध करने की विधिक आवश्यकताओं के संबंध में विभिन्न पूर्ववर्ती निर्णयों का उल्लेख करते हुए उन पर भरोसा किया गया है। इस न्यायालय ने वसीयत को सिद्ध करने के आवश्यक विधिक मानकों पर विस्तार से विचार किया और अंततः यह अभिधारित किया कि मात्र वसीयत का पंजीकरण उसके लिए वैधता की मुहर नहीं लगाता, बल्कि इसे अभी भी उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के विधिक प्रावधानों के अनुसार सिद्ध किया जाना आवश्यक है।

10. उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 वसीयत को सिद्ध करने की विधि और तरीके का निर्धारण करती है तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के प्रावधानों के अनुसार, जब तक किसी एक अभिप्रमाणित साक्षी का परीक्षण न कर लिया जाए, वसीयत को साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता। वसीयत को सिद्ध करने के लिए एक अभिप्रमाणित साक्षी का परीक्षण पर्याप्त होगा। यहाँ हम यह जोड़ना और विशेष रूप से रेखांकित करना आवश्यक समझते हैं कि यदि वसीयत का विरोध करने वाले किसी पक्ष द्वारा सुविचारित संदिग्ध परिस्थिति/परिस्थितियाँ स्थापित कर दी जाती हैं, तो उन परिस्थितियों को न्यायालय की संतुष्टि हेतु दूर करने का भार प्रस्तुतकर्ता पर स्थानांतरित हो जाएगा। वर्तमान वाद में, इस तथ्य को लेकर कोई विवाद नहीं है कि अभिप्रमाणित साक्षियों में से एक, अर्थात् ग्रेगरी पेरिस, का परीक्षण किया गया था और इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार

---

1 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1488

यह भी निर्विवाद है कि उक्त साक्षी ने वसीयतकर्ता द्वारा वसीयत के निष्पादन के पश्चात, उनके समक्ष ही उस पर हस्ताक्षर किए थे।

11. स्पष्टतः, विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के प्रावधानों के अनुसार विधिक आवश्यकताओं का वादकारियों द्वारा पालन किया गया है और अंततः यह अभिधारित किया कि वादकारी वसीयत के निष्पादन को सिद्ध करने में सफल हुए हैं।

12. दिनांक 10.11.1992 की वसीयत के निष्पादन के प्रश्न पर, अपीलाधीन आदेश के पैरा 21 से ही यह स्पष्ट होता है कि उच्च न्यायालय ने अभिलेखों (प्लीडिंग्स), मौखिक साक्ष्य, जिसमें पीडब्ल्यू-1 एवं पीडब्ल्यू-2 के साक्ष्य भी शामिल हैं, तथा दस्तावेजी साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के उपरांत यह अवलोकन और निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 एवं 6 ने वसीयत के निष्पादन का प्रतिवाद न करने का निर्णय लिया था और यह भी कि केवल प्रतिवादी सं. 5 (जो वहाँ अपीलकर्ता था) ने ही वसीयत के निष्पादन का विरोध किया था। यह निष्कर्ष इस प्रश्न पर विचार करते समय निकाला गया कि क्या प्रतिवादी सं. 1 एवं अन्य द्वारा दिया गया स्वीकारोक्ति तथा प्रतिवादी सं. 1 द्वारा लिखे गए पत्र वसीयत के विधिवत एवं वैध निष्पादन को सिद्ध करने में सहायक होंगे। इस संबंध में अपीलाधीन निर्णय के पैरा 21 में उल्लिखित प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

> *"21. .... पीडब्ल्यू-2 तथा पीडब्ल्यू-1 के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 एवं 6 ने वसीयत के निष्पादन का प्रतिवाद न करने का निर्णय लिया था और वे वादकारियों का समर्थन कर रहे थे, तथा केवल प्रतिवादी सं. 5 ही था जिसने वसीयत के निष्पादन का विरोध किया था। अतः, ऐसे पक्षकारों द्वारा लिखे गए किसी भी पत्र, जो वाद का प्रतिवाद नहीं कर रहे हैं और वादकारियों का समर्थन कर रहे हैं, से वादकारियों को किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। इसलिए, इस संदर्भ में वादकारियों तथा प्रतिवादी सं. 1 से 4, 6 एवं 7 के आचरण पर विचार किया जाना आवश्यक है और उन दस्तावेजों को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता जो उन प्रतिवादियों के कहने पर अस्तित्व में आए हैं जो वादकारियों का समर्थन कर रहे हैं......"*

13. उपरोक्त निर्विवाद स्थिति के आलोक में तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विचारण न्यायालय द्वारा प्रोबेट प्रदान किए जाने के बावजूद केवल प्रतिवादी सं. 5 ने ही विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध अपील दायर की थी और यह भी कि प्रतिवादी सं. 5 अब जीवित नहीं है, केवल उसके विधिक प्रतिनिधियों को ही वसीयत के निष्पादन के प्रश्न पर प्रतिवाद करने की अनुमति दी जा सकती है। किन्तु यह भी तथ्य है कि मृत प्रतिवादी सं. 3 एवं 5 के विधिक प्रतिनिधियों ने समन प्राप्त होने के बावजूद वर्तमान

कार्यवाही में वाद का प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। इसके अतिरिक्त, यह एक निर्विवाद तथ्य है कि प्रतिवादी सं. 5 ने पूर्व में संशोधन के माध्यम से यह मामला स्थापित करने का प्रयास किया था (यद्यपि अंततः वह इसे सिद्ध करने में असफल रहा) कि विवादित वसीयत दिनांक 10.11.1992 को वसीयतकर्ता द्वारा बाद में दिनांक 20.11.1992 को प्रदर्श डी-5 के अनुसार निरस्त कर दी गई थी। इससे दो पहलू स्पष्ट होते हैं। प्रथम, यह कि उसने इस तथ्य को स्वीकार किया कि विवादित वसीयत दिनांक 10.11.1992 वास्तव में वसीयतकर्ता द्वारा निष्पादित की गई थी और वह उसकी विषयवस्तु से पूर्णतः अवगत थीं। यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि प्रतिवादी सं. 5 ने दिनांक 08.06.1999 को प्रदर्श डी-5 प्रस्तुत किया था, तथापि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों ने ही इस संबंध में उसके विरुद्ध निष्कर्ष दिए।

14. अब, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार, वसीयतकर्ता को 11.11.1992 को बॉम्बे स्थित जसलोक अस्पताल में केवल घुटना प्रत्यारोपण (नी रिप्लेसमेंट) शल्यक्रिया हेतु भर्ती कराया गया था, जिससे गठिया के कारण उत्पन्न कष्ट से राहत मिल सके। अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि वसीयतकर्ता को तीन दिनों तक रक्त आधान (ब्लड ट्रांसफ्यूजन) दिया गया, तत्पश्चात शल्यक्रिया की गई और उनकी स्थिति गंभीर हो गई, तथा वे अपनी मृत्यु दिनांक 08.01.1993 तक कुल 53 दिनों तक उक्त अस्पताल में रहीं। ऐसी स्थिति में, यदि प्रतिवादी सं. 5 यह रुख अपनाता है कि दिनांक 20.11.1992 को प्रदर्श डी-5 के निष्पादन के समय वसीयतकर्ता स्वस्थ मानसिक अवस्था में थीं, तो वह यह कैसे उचित ठहरा सकता है कि जसलोक अस्पताल, बॉम्बे में भर्ती होने से पूर्व अर्थात् 10.11.1992 को वे स्वस्थ मानसिक अवस्था में नहीं थीं। प्रदर्श डी-5 के माध्यम से प्रस्तुत उसके कथन के आलोक में, प्रतिवादी सं. 5 यह तर्क नहीं उठा सकता था कि वसीयतकर्ता स्वस्थ मानसिक अवस्था में नहीं थीं। यह प्रदर्श डी-5 से उत्पन्न दूसरा पहलू है। उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख केवल इस उद्देश्य से किया गया है कि यह प्रदर्शित किया जा सके कि प्रतिवादी सं. 5 का यह कथन कि प्रदर्श पी-2, अर्थात् दिनांक 10.11.1992 की वसीयत, स्वस्थ मानसिक अवस्था में निष्पादित नहीं की गई थी, निराधार है। वैसे भी, मृत प्रतिवादी सं. 5 के विधिक प्रतिनिधि, जिन्होंने अकेले ही प्रदर्श पी-2 वसीयत के निष्पादन का विवाद किया था, वर्तमान में इस वाद का प्रतिवाद नहीं कर रहे हैं। उपरोक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि प्रतिवादी सं. 2 एवं 3, जो वाद में प्रतिवादी सं. 1 एवं 6 हैं, को दिनांक 10.11.1992 की वसीयत के निष्पादन का विवाद करने की अनुमति नहीं दी जा सकती और उन्हें केवल अपीलाधीन निर्णय को बनाए रखने के समर्थन में तर्क प्रस्तुत करने की ही अनुमति दी जा सकती है।

15. अब, हम उल्लिखित संदिग्ध परिस्थितियों का संदर्भ लेंगे। ***गुरदियाल कौर एवं अन्य बनाम करतार कौर एवं अन्य*** [2] के निर्णय के आलोक में इस विधिक स्थिति को लेकर कोई

---

2 (1998) 4 एस.सी.सी. 384

संदेह नहीं है कि जब वसीयत के वैध निष्पादन के संबंध में संदिग्ध परिस्थितियाँ विद्यमान हों, तो वसीयत की वैधता की घोषणा चाहने वाले व्यक्ति का यह दायित्व होता है कि वह ऐसी संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करे। इस संदर्भ में, हमें मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय ***नाथिया बाई एवं अन्य बनाम गंगाराम एवं अन्य*** [3] का उल्लेख करना अनुचित नहीं लगता, जिससे हम सहमत हैं, जिसमें इस न्यायालय के निर्णय ***मीनाक्षीअम्मल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम चंद्रशेखरन एवं अन्य*** [4] तथा ***पी.पी.के. गोपालन नांबियार बनाम पी.पी.के. बालकृष्णन नांबियार*** [5] पर भरोसा करते हुए यह कहा गया है कि जो पक्ष वसीयत के निष्पादन को संदिग्ध बताकर चुनौती देता है, उसे उन संदिग्ध परिस्थितियों का प्रतिपादन करना आवश्यक है; तभी प्रस्तुतकर्ता विधिक रूप से उन संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने के लिए बाध्य होगा।

नाथिया बाई के मामले में इस प्रकार अभिधारित किया गया था:-

"11. वसीयत को अन्य किसी दस्तावेज की भांति ही सिद्ध किया जाना आवश्यक है, जिसके लिए उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63(ग) के अंतर्गत अपेक्षित तत्वों को सिद्ध करने हेतु अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करना होता है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार अभिप्रमाणित साक्षी का परीक्षण करना होता है। यह भी सुव्यवस्थित विधि है कि वसीयत के प्रस्तुतकर्ता को सभी संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करते हुए वसीयत को सिद्ध करना होता है। अतः, यदि प्रतिवादियों द्वारा संदिग्ध परिस्थितियों का प्रतिपादन किया गया होता, तभी वादकारी, जो वसीयत के प्रस्तुतकर्ता हैं, विधिक रूप से उन संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने के लिए बाध्य होते। मेरे विचार से, वसीयत का विरोध करने वाले पक्ष को अभिलेख पर ऐसी सामग्री प्रस्तुत करनी आवश्यक थी, जिससे वसीयत को एक संदिग्ध दस्तावेज कहा जा सके और ऐसी स्थिति में भार पुनः वसीयत के प्रस्तुतकर्ता पर स्थानांतरित हो जाता कि वह सकारात्मक साक्ष्य प्रस्तुत कर न्यायालय को संतुष्ट करे कि वसीयत संदिग्ध नहीं है........

(रेखांकन प्रदान किया गया)

मीनाक्षीअम्मल के मामले (उपर्युक्त) में पैरा 19 एवं 20 में इस प्रकार अभिधारित किया गया था:-

"19. चिन्मयी साहा बनाम देबेन्द्र लाल साहा [6] *के मामले में यह अभिधारित किया गया*

---

3 (2010) 1 एम.पी.एल.जे. 140

4 (2005) 1 एस.सी.सी. 280

5 ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 1852

6 ए.आई.आर. 1958 कैल. 349

है कि यदि प्रस्तुतकर्ता वसीयत के निष्पादन में प्रमुख भूमिका निभाता है और उससे उसे पर्याप्त लाभ प्राप्त होता है, तो प्रस्तुतकर्ता को स्पष्ट एवं संतोषजनक साक्ष्य द्वारा संदेहों को दूर करना आवश्यक होता है। एक बार प्रस्तुतकर्ता यह सिद्ध कर देता है कि वसीयत पर वसीयतकर्ता ने हस्ताक्षर किए थे, कि वह उस समय स्वस्थ मानसिक अवस्था में था, कि उसने विनियोजन (डिस्पोज़िशन) के स्वरूप और प्रभाव को समझा था तथा उसने अपने स्वतंत्र इच्छा से उस पर हस्ताक्षर किए थे, और यह कि उसने गवाहों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए, जिन्होंने उसके समक्ष उसका अभिप्रमाणन किया, तब प्रस्तुतकर्ता पर स्थित प्रमाण का भार निर्वहन हो जाता है। और जब केविएटर द्वारा अनुचित प्रभाव, धोखाधड़ी या दबाव का आरोप लगाया जाता है, तब उन आरोपों को सिद्ध करने का भार केविएटर पर होता है।

20. रयाली कामेश्वर राव बनाम बेंदापुड़ी सूर्यप्रकाशराव [7] के मामले में इस न्यायालय ने उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के प्रावधानों पर विचार करते हुए <u>यह अभिधारित किया कि आरोपित संदेह वही होना चाहिए जो स्वयं लेन-देन में अंतर्निहित हो, न कि वह संदेह जो साक्ष्यों के परस्पर विरोध से उत्पन्न होता है और जो जांच के दौरान प्रकट होता है।</u> संदिग्ध परिस्थितियों को सटीक रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता और न ही उनका पूर्णतः वर्गीकरण किया जा सकता है। वे प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करती हैं। जब यह प्रश्न उठता है कि वसीयत वास्तविक है या जाली, तो सामान्यतः यह तथ्य कि उसके प्रावधानों की युक्तिसंगतता के विरुद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता, वसीयत के पक्ष में एक प्रबल एवं महत्वपूर्ण तत्व होता है। यह कि वसीयतकर्ता ने वसीयत को स्वस्थ मानसिक अवस्था में निष्पादित किया या नहीं, पूर्णतः तथ्य का प्रश्न है, जिसका निर्णय प्रत्येक मामले में प्रकट परिस्थितियों तथा प्रस्तुत साक्ष्यों की प्रकृति एवं गुणवत्ता के आधार पर किया जाएगा। <u>जब यह आरोप लगाया जाता है कि वसीयत का निष्पादन अनुचित प्रभाव के अधीन हुआ, तो ऐसे अनुचित प्रभाव को सिद्ध करने का भार आरोप लगाने वाले व्यक्ति पर होता है और मात्र उद्देश्य (मोटिव) एवं अवसर की उपस्थिति पर्याप्त नहीं होती।</u>

(रेखांकन प्रदान किया गया)

मधुकर डी. शेंडे बनाम ताराबाई आबा शेडगे [8] के निर्णय में, जहाँ तक प्रासंगिक है, इस प्रकार कहा गया है:

---

7 ए.आई.आर. 1962 ए.पी. 178

8 (2002) 2 एस.सी.सी. 85

"8. वसीयत के प्रमाण की आवश्यकता अन्य किसी दस्तावेज के समान ही होती है, अपवादस्वरूप यह कि वसीयत के प्रमाण हेतु प्रस्तुत साक्ष्य को अतिरिक्त रूप से साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 63 की आवश्यकताओं को भी संतुष्ट करना चाहिए। यदि न्यायालय अपने समक्ष उपलब्ध तथ्यों एवं परिस्थितियों, जो अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रकट होती हैं, पर विचार करने के पश्चात यह विश्वास कर लेता है कि वसीयत का विधिवत निष्पादन वसीयतकर्ता द्वारा किया गया था, अथवा इस तथ्य के अस्तित्व को इतना संभाव्य मानता है कि उस विशेष मामले की परिस्थितियों में कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस धारणा पर कार्य करे कि वसीयत का विधिवत निष्पादन हुआ था, तब वसीयत के निष्पादन का तथ्य सिद्ध माना जाएगा। न्यायिक रूप से प्रशिक्षित मस्तिष्क द्वारा निर्मित प्रमाण की सूक्ष्म संरचना दुर्बल आधार पर टिक नहीं सकती और न ही उसमें अंतर्निहित दोषों के रहते टिके रह सकती है, किन्तु साथ ही उसे राह चलते व्यक्तियों द्वारा संदेह और अनुमान के पत्थरों से अनुचित रूप से ध्वस्त होने की अनुमति भी नहीं दी जानी चाहिए। इस संदर्भ में बैरन एल्डरसन द्वारा जूरी को आर. बनाम हॉज में कही गई बात कुछ हद तक प्रासंगिक है:

> *'मन परिस्थितियों को एक-दूसरे के अनुकूल बनाने में आनंद लेता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें थोड़ा मोड़कर एक समग्र रूप में जोड़ने का प्रयास भी करता है; और जितना अधिक किसी व्यक्ति का मस्तिष्क कुशाग्र होता है, उतनी ही अधिक संभावना होती है कि वह ऐसे मामलों पर विचार करते समय स्वयं को भ्रमित कर ले, किसी अभावित कड़ी को स्वयं ही जोड़ दे, और अपने पूर्ववर्ती सिद्धांतों के अनुरूप तथा उन्हें पूर्ण बनाने के लिए आवश्यक तथ्यों को मान ले।'*

न्यायालय की अंतरात्मा को संतुष्ट करना वसीयत के प्रस्तुतकर्ता का दायित्व है, जिसके लिए उसे साक्ष्य प्रस्तुत कर वसीयत से संबद्ध किसी भी संदेह या अप्राकृतिक परिस्थितियों को दूर करना होता है, बशर्ते कि वसीयत में वास्तव में कुछ अप्राकृतिक या संदिग्ध हो। साक्ष्य का विधि-सिद्धांत अनुमान या संदेह को विधिक प्रमाण का स्थान लेने की अनुमति नहीं देता और न ही उन्हें ऐसे तथ्य को नष्ट करने की अनुमति देता है जो अन्यथा विधिसम्मत एवं विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा सिद्ध हो चुका हो। सुसंगत एवं ठोस संदेह साक्ष्यों की अधिक गहन जांच का आधार हो सकता है, किन्तु मात्र संदेह ही किसी न्यायिक निर्णय–चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक–का आधार नहीं बन सकता।

9. *यह सुव्यवस्थित है कि जो व्यक्ति वसीयत का प्रस्तुतीकरण करता है, उसे यह स्थापित करना होता है कि वसीयतकर्ता वसीयत के निष्पादन के समय उसे बनाने के*

लिए सक्षम था। प्रस्तुतकर्ता द्वारा वसीयतकर्ता की क्षमता तथा विधि द्वारा अपेक्षित तरीके से वसीयत के निष्पादन को प्रथमदृष्टया सिद्ध करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत कर देने पर उसका प्रमाण-भार निर्वहन हो जाता है। वसीयत का विरोध करने वाला पक्ष ऐसे प्रथमदृष्टया मामले का प्रतिवाद करने हेतु अभिलेख पर सामग्री प्रस्तुत कर सकता है, ऐसी स्थिति में भार पुनः प्रस्तुतकर्ता पर स्थानांतरित हो जाता है कि वह न्यायालय को सकारात्मक रूप से संतुष्ट करे कि वसीयतकर्ता वसीयत की विषयवस्तु से भली-भांति अवगत था और उसने स्वस्थ मानसिक अवस्था में उसका निष्पादन किया। ऐसे कारक, जैसे कि वसीयत का स्वाभाविक होना, उसका पंजीकृत होना या ऐसे परिस्थितियों एवं वातावरण में निष्पादित होना जिससे किसी प्रकार का संदेह उत्पन्न न हो, महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यदि लेन-देन में कुछ भी अप्राकृतिक नहीं है और प्रस्तुत साक्ष्य वसीयत को सिद्ध करने की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, तो न्यायालय केवल अनुमानित संदेह या कल्पना के आधार पर 'अप्रमाणित' का निष्कर्ष नहीं देगा। वसीयत का प्रस्तुतीकरण एवं समर्थन करने वाले व्यक्तियों तथा वसीयत का विवाद करने वाले व्यक्ति की स्थिति, साथ ही पक्षकारों की दलीलें, भी प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण होती हैं।

(रेखांकन प्रदान किया गया)

पी.पी.के. गोपालन नांबियार के मामले (उपर्युक्त) में इस न्यायालय ने पैरा 4 में इस प्रकार अभिधारित किया था:-

"4. *अपील में अधीनस्थ न्यायाधीश ने वसीयत की वैधता को स्वीकार करने के लिए विभिन्न कारण दिए। उन कारणों में से एक यह था कि वसीयत पंजीकृत थी और पंजीयक द्वारा किया गया अभिलेख यह दर्शाता है कि वसीयतकर्ता स्वस्थ मानसिक अवस्था में थी तथा वसीयत उसके स्वतंत्र इच्छाशक्ति से निष्पादित की गई थी, और इसलिए डीडब्ल्यू-2, जो एक अभिप्रमाणित साक्षी है, के साक्ष्य में पाई गई विसंगति वसीयत की वैधता को प्रभावित नहीं करती। अपील में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने साक्ष्यों पर विचार किए बिना ही एक वाक्य में यह कह दिया कि वह विचारण न्यायालय के तर्क से सहमत हैं और अपीलीय न्यायालय के तर्क से सहमत नहीं हैं। विद्वान न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण को समझना हमारे लिए कठिन है। उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि वसीयत के अंतर्गत संपूर्ण संपत्ति का पुत्र को दिया जाना अपने आप में एक संदिग्ध परिस्थिति उत्पन्न करता है। विद्वान न्यायाधीश के इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है। यह निर्विवाद है कि वसीयत का निष्पादन एवं पंजीकरण 01-11-1955 को हुआ था और उसके 8 वर्ष पश्चात 1963 में वसीयतकर्ता का निधन हुआ। जब अपीलकर्ता ने अपने लिखित कथन में वसीयत का प्रस्तुतीकरण किया था, तब प्रतिवादी अथवा किसी भी प्रतिवादी को यह बाधा नहीं थी कि वे आदेश*

8 नियम 9 के अंतर्गत न्यायालय की अनुमति लेकर प्रत्युत्तर, अर्थात् अतिरिक्त लिखित कथन दाखिल कर वसीयत की अवैधता का प्रतिपादन करें। किंतु अभिलेखों (प्लीडिंग्स) में इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है। यहाँ तक कि साक्ष्य के दौरान, जब अपीलकर्ता को डीडब्ल्यू-1 के रूप में परीक्षित किया गया और अभिप्रमाणन हेतु डीडब्ल्यू-2 का परीक्षण हुआ, तब भी अपीलकर्ता द्वारा वसीयत के निष्पादन हेतु कथित दबाव के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया। प्रथम प्रतिवादी द्वारा की गई जिरह में भी वसीयत की शुद्धता पर संदेह उत्पन्न करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

5. *इन परिस्थितियों में, जिला मुंसिफ के मन में उत्पन्न संदेह का कोई आधार नहीं था और उन्होंने उन्हें बिना किसी तथ्यात्मक आधार के मनगढ़ंत रूप से ग्रहण किया। अधीनस्थ न्यायाधीश ने सभी परिस्थितियों पर समुचित विचार करते हुए वसीयत को सही ठहराया था। उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों की जांच किए बिना, मात्र इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में प्रतिपादित विधिक स्थिति को उद्धृत करते हुए, एक ही वाक्य में अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्ष को उलट दिया।यह सर्वविदित है कि वसीयत के प्रस्तुतकर्ता का यह दायित्व है कि वह वसीयत को सिद्ध करे और सभी संदिग्ध पहलुओं को दूर करे। किन्तु वे संदिग्ध पहलू वास्तविक, प्रासंगिक और वैध होने चाहिए, न कि संदेहशील मन की कल्पना मात्र।"*

(रेखांकन प्रदान किया गया)

16. उपर्युक्त निर्णयों के आलोक में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि एक बार प्रस्तुतकर्ता द्वारा उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार प्रमाण का भार निर्वहन कर दिया जाता है और वसीयतकर्ता की क्षमता को प्रथमदृष्टया सिद्ध करने वाला साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया जाता है, तब विरोध करने वाले पक्ष पर यह भार होता है कि वह प्रथमदृष्टया संदिग्ध परिस्थितियों के अस्तित्व को प्रदर्शित करे, जिससे यह भार पुनः प्रस्तुतकर्ता पर स्थानांतरित हो सके कि वह उन्हें दूर करे। जिन परिस्थितियों को विरोधी पक्ष संदिग्ध मानता है, उनके ज्ञान के बिना प्रस्तुतकर्ता उन्हें कैसे दूर करेगा और न्यायालय को उसकी प्रामाणिकता एवं वैधता के संबंध में कैसे संतुष्ट करेगा। हमारा आशय यह है कि वसीयत का विरोध करने वाले पक्ष को संदिग्ध परिस्थितियों को विशेष रूप से प्रस्तुत करना होगा, न कि अस्पष्ट या सामान्य रूप में। प्रस्तुतकर्ता द्वारा वसीयत के निष्पादन का प्रमाण देने के पश्चात भार को पुनः उस पर स्थानांतरित करने हेतु सुविचारित एवं ठोस संदेह का मामला होना आवश्यक है। हम यह भी स्पष्ट कर दें कि हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि यदि पक्षकार संदिग्ध परिस्थितियों का प्रतिपादन करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय स्वतः ही वसीयत को वैध रूप से सिद्ध मान लेगा, भले ही दस्तावेज़ में अंतर्निहित

परिस्थितियाँ संदेह उत्पन्न करती हों। निस्संदेह, ऐसी स्थिति में प्रस्तुतकर्ता को न्यायालय को संतुष्ट करना होगा और उन संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करना होगा।

17. क्रमशः, यह उपयुक्त है कि इस प्रश्न पर उच्च न्यायालय के उस निष्कर्ष की संगतता पर विचार किया जाए कि वादकारी यह सिद्ध करने में असफल रहे कि वसीयतकर्ता ने वसीयत की विषयवस्तु की जानकारी के साथ उसका निष्पादन किया, और इसे एक संदिग्ध परिस्थिति के रूप में ग्रहण किया गया। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से प्राप्त अप्रतिवादित तथ्यात्मक स्थिति यह है कि वसीयतकर्ता, जिनका 08.01.1993 को 69 वर्ष की आयु में निधन हुआ, एस.एस.एल.सी. तक शिक्षित थीं और अंग्रेज़ी पढ़ने-लिखने में सक्षम थीं। वे 6 वर्षों तक नगर पार्षद रहीं, मंगलौर पोर्ट ट्रस्ट की न्यासी, चेशायर होम, मंगलौर की सदस्य तथा चिकमगलूर के क्रिश्चियन प्लांटर्स गिल्ड की अध्यक्ष थीं, साथ ही एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता भी थीं। हम पहले ही यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि विवादित वसीयत के अभिप्रमाणित साक्षियों में से एक, पीडब्ल्यू-3 का परीक्षण वसीयत के निष्पादन को सिद्ध करने हेतु वैधानिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया गया था। पीडब्ल्यू-3 ने यह बयान दिया कि वसीयतकर्ता ने स्वयं उन्हें वसीयत के अभिप्रमाणन हेतु बुलाया था और उन्होंने वसीयतकर्ता को हस्ताक्षर करने से पूर्व दस्तावेज़ पढ़ते हुए देखा था। पीडब्ल्यू-2, जो वसीयतकर्ता के पुत्रों में से एक हैं, ने भी इस कथन की पुष्टि की कि पीडब्ल्यू-3 को उनकी माता ने फोन पर वसीयत के अभिप्रमाणन हेतु बुलाया था तथा उन्होंने स्वयं वसीयत पढ़ी थी। प्रतिवादियों द्वारा जिरह के दौरान उनके कथनों को अविश्वसनीय ठहराने हेतु कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। पीडब्ल्यू-3 ने यह भी कहा कि वसीयतकर्ता ने उनके समक्ष ही वसीयत पर हस्ताक्षर किए थे। यह नहीं कहा जा सकता कि गठिया (आर्थराइटिस) से पीड़ित व्यक्ति दस्तावेज़ की विषयवस्तु को पढ़ने और समझने में असमर्थ होगा। हमने प्रतिवादी सं. 5 द्वारा प्रदर्श डी-5 प्रस्तुत कर किए गए संशोधन के प्रयास तथा उससे उत्पन्न निष्कर्षों पर भी विचार किया है। उपर्युक्त स्थिति में, किसी भी प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि वसीयतकर्ता अशिक्षित थीं या उन्होंने वसीयत की विषयवस्तु को समझे बिना उस पर हस्ताक्षर किए। इन परिस्थितियों में, वे संदेह, जिन्होंने प्रतिवादी सं. 5 के मन में उत्पन्न होकर उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए, टिक नहीं सकते। दूसरे शब्दों में, उन्हें कायम नहीं रखा जा सकता।

18. एक अन्य परिस्थिति, जिसे उच्च न्यायालय ने संदिग्ध परिस्थिति माना, वह वसीयत के अंतर्गत लाभार्थियों की उसके निष्पादन में प्रमुख भागीदारी है। निष्पादन से संबंधित प्रमुख भागीदारी का आरोप वसीयतकर्ता पर किसी प्रकार के प्रभावपूर्ण हस्तक्षेप का संकेत देता है। इस विधिक स्थिति को लेकर कोई संदेह नहीं है कि वसीयत के निष्पादन के समय निष्पादक या किसी लाभार्थी की मात्र उपस्थिति, अपने आप में, वसीयत को अमान्य नहीं बनाती और न ही यह उसके निष्पादन पर संदेह उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। किसी भी स्थिति में, यह उस व्यक्ति पर निर्भर है जो ऐसा आरोप लगाता है कि वह यह सिद्ध करे कि वह मात्र

उपस्थिति नहीं थी, बल्कि ऐसी थी जो वसीयतकर्ता को प्रभावित करने में सक्षम थी। इसी प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया एक अन्य कारण कि वसीयत का प्रारूप तैयार करने वाले अधिवक्ता का परीक्षण नहीं किया गया, हमारे मत में कोई विधिक आवश्यकता नहीं है और किसी भी दशा में, उस अधिवक्ता का परीक्षण न किया जाना वसीयत को अस्वीकार करने का आधार नहीं बन सकता, जब वसीयत को एक अभिप्रमाणित साक्षी के परीक्षण द्वारा सिद्ध किया जा चुका है और अन्य कोई परिस्थिति उसे संदिग्ध बनाने हेतु विद्यमान नहीं है। इस संबंध में हमारे मत को इस न्यायालय के निर्णय "***रामाबाई पद्माकर पाटिल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम रुक्मिणीबाई विष्णु वेखंडे एवं अन्य***[9] " से समर्थन प्राप्त होता है।"

19. इसके अतिरिक्त, (प्रदर्श पी-3 एवं प्रदर्श पी-4) दस्तावेज निस्संदेह यह प्रदर्शित करते हैं कि विवादित वसीयत पर पक्षकारों द्वारा कार्य किया गया था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि डीडब्ल्यू-1 की मौखिक साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि अपने परीक्षण के दौरान उसने वसीयत के अंतर्गत ₹5,000/- प्राप्त होने की बात स्वीकार की। इसके अतिरिक्त, उसके साक्ष्य से यह भी प्रकट होता है कि फर्म का विघटन 27.03.1987 को हुआ था और तत्पश्चात प्रदर्श पी-8 (समझौता ज्ञापन) के अनुसार साझेदारी का पुनर्गठन किया गया। विभाजन के अनुसार, जिस समूह का डीडब्ल्यू-1 सदस्य था, उसे चिकमगलूर जिला के जागरा ग्राम स्थित 'शीगेकन एस्टेट' नामक 62 एकड़ का कॉफी बागान तथा बी.सी. रोड, बंटवाल में स्थित 'मॉडर्न टाइल वर्क्स' नामक टाइल फैक्टरी प्राप्त हुई। उसने यह भी कहा कि उसके पिता द्वारा निष्पादित वसीयत के अंतर्गत उसे मंगलौर में 23 सेंट भूमि प्राप्त हुई। उसके साक्ष्य से यह भी स्पष्ट होता है कि ऐसे संपत्ति प्राप्त करने वाले पक्षकारों, जिनमें वह स्वयं भी शामिल है, ने बाद में उन संपत्तियों का विक्रय कर दिया। अपीलकर्ताओं ने इस तथ्य पर यह तर्क प्रस्तुत किया कि इससे यह सिद्ध होता है कि वसीयत में कुछ बच्चों को वंचित करने में कुछ भी अप्राकृतिक नहीं था। इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि वसीयत सामान्यतः उत्तराधिकार के प्राकृतिक क्रम को परिवर्तित करने के उद्देश्य से निष्पादित की जाती है और इसके परिणामस्वरूप किसी स्वाभाविक उत्तराधिकारी के हिस्से में कमी या वंचना हो सकती है। यदि वसीयतकर्ता का ऐसा अभिप्राय न हो, तो वसीयत निष्पादित करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती।

20. उपर्युक्त परिस्थितियों में, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि विचारण न्यायालय ने सभी परिस्थितियों का समुचित रूप से विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला था कि प्रदर्श पी-2 वसीयत का वैध रूप से निष्पादन हुआ था और इसे अपीलकर्ताओं द्वारा सिद्ध

---

9 (2003) 8 एस.सी.सी. 537

आधारहीन थीं और उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालना कि दिनांक 10.11.1992 की विवादित वसीयत सिद्ध नहीं हुई है, त्रुटिपूर्ण है। अतः, कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु द्वारा एम.एफ.ए. संख्या 3077/2001 में पारित दिनांक 21.11.2008 का निर्णय एवं आदेश निरस्त किया जाता है तथा दक्षिण कन्नड़, मैंगलोर स्थित तृतीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा वाद संख्या 21/1997 में पारित दिनांक 20.02.2001 का निर्णय एवं डिक्री पुनर्स्थापित एवं पुष्टि की जाती है। तदनुसार, अपील स्वीकृत की जाती है। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

21. लंबित आवेदन, यदि कोई हों, निराकृत माने जाएंगे।

शीर्ष टिप्पणियाँ अंकित ज्ञान द्वारा तैयार की गईं **अपील स्वीकृत।**

यह अनुवाद संजय नारायण, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|